प्रकाशन तिथि : 26 दिसम्बर 2014, मूल्य 3 रुपये, वर्ष 33, अंक 6, कुल पृष्ठ 36

वीतराग-विज्ञान

(पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का मुखपत्र)

सम्पादक :
डॉ. हुकमचंद भारिल्ल

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी

(125वीं जन्म जयन्ती के अवसर पर)

वीतराग-विज्ञान (378)

हिन्दी, मराठी व कन्नड़ भाषा में प्रकाशित

जैनसमाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक

सम्पादक :

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

सह-सम्पादक :

डॉ. संजीवकुमार गोधा

प्रकाशक एवं मुद्रक :

ब्र. यशपाल जैन द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये रेनबो ऑफसेट प्रिण्टर्स, बाईस गोदाम, जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

सम्पर्क-सूत्र :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015

फोन :(0141)2705581, 2707458

फैक्स : 2704127

E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

शुल्क :

आजीवन	:	251 रुपये
वार्षिक	:	25 रुपये
एक प्रति	:	3 रुपये

मुद्रण संख्या :

हिन्दी	:	7200
मराठी	:	2000
कन्नड़	:	1000
कुल	:	**10200**

उसे अधिक भव नहीं होते

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को करता तो नहीं है, किन्तु स्पर्श भी नहीं करता। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। प्रत्येक द्रव्य की पर्याय क्रमबद्ध होती है। आत्मा मात्र ज्ञायक परमानन्द स्वरूप है। यह भगवान सर्वज्ञदेव की दिव्यध्वनि की पुकार है। ऐसी अध्यात्म की सूक्ष्म वस्तु इस काल जिन्हें अंतर में रुचिपूर्वक परिणमित हो जाती है ऐसे जीवों को एक-दो-चार भव ही होते हैं, अधिक नहीं होते हैं - ऐसा शास्त्र में आता है; क्योंकि इस काल में केवली, अवधिज्ञानी या मन:पर्ययज्ञानी नहीं हैं, आश्चर्य के कारण ऐसे इन्द्रादि देवों का आगमन नहीं होता, चक्रवर्ती आदि कोई चमत्कारिक वस्तुएँ नहीं हैं; तथापि यह आध्यात्मिक सूक्ष्मतत्त्व अंतर में रुच जाता है उसके भाव विशेष हैं; इसलिये उसे अधिक भव नहीं होते। 177

- द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर, पृष्ठ -41

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का , घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 33 (वीर नि. संवत् - 2541) 378 अंक : 6

रे जिय ! क्रोध काहे करै...

रे जिय ! क्रोध काहे करै !
देखकै अविवेकि प्रानी, क्यों विवेक न धरै।।
जिसे जैसी उदय आवै, सो क्रिया आचरै।
सहज तू अपनो बिगारै, जाय दुर्गति परै।।
रे जिय ! क्रोध काहे करै... ।।१।।
होय संगति गुन सबनिकों, सरब जग उच्चरै।
तुम भले कर भले सबको, बुरे लखि मति जरै।।
रे जिय ! क्रोध काहे करै... ।।२।।
वैद्य परविष हर सकत नहिं, आप भाखिका मरै।
बहु कषाय निगोद-वासा, छिमा 'द्यानत' तरै।।
रे जिय ! क्रोध काहे करै... ।।३।।

- कविवर पण्डित द्यानतरायजी

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी की 125वीं जन्मजयन्ती के अवसर पर उनके प्रवचनों में से महत्वपूर्ण 125 अंशों को पाठकों के लाभार्थ यहाँ क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है।

(89) भाई ! यह तो वीतराग का मार्ग है। समयसार, प्रवचनसार आदि शास्त्र भगवान की दिव्यध्वनि के सार हैं। सर्वज्ञ परमात्मा ने जो कहा है; उसके अनुसार चार ज्ञान के धनी, अन्तर्मुहूर्त में चौदह पूर्व की रचना करनेवाले गणधरदेव ने जो कहा है; उसका सब सार इस शास्त्र (समयसार) में भरा है। अज्ञानी अल्पज्ञ जीव इसमें अपनी मतिकल्पना से मनमाना अर्थ करें तो कैसे चलेगा ? इसमें जरा भी फेरफार करें तो मिथ्यात्व का महादोष उत्पन्न होगा।

– वीतराग-विज्ञान : जनवरी 1984, पृष्ठ 13

(90) देखो ! आत्मा का स्वाद आए बिना विषयों को छोड़ना चाहे तो वे छूट नहीं सकते। आत्मा के सहज आनन्द का भान होने पर विषयों में सुखबुद्धि नियम से छूट जाती है, रहती ही नहीं। जहाँ चैतन्य के सहज आनन्द का स्वाद आया, वहाँ विषयों की इच्छा नहीं होती। **– वीतराग-विज्ञान : फरवरी 1984, पृष्ठ 16**

(91) ऐसा दुर्लभ अवसर पाकर भी हे जीव ! यदि तूने तेरे स्वज्ञेय को नहीं जाना और स्वाश्रय से मोक्षमार्ग को नहीं साधा तो तेरा जीवन व्यर्थ है। यह अवसर चला जावेगा, तब तू पछतायेगा; इसलिए जाग और स्वहित में तत्पर बन !

– वीतराग-विज्ञान : मार्च 1984, पृष्ठ 22

(92) घर हो या जंगल, महल हो या मसान – ये सब आत्मा से भिन्न परद्रव्य हैं, तो भी अज्ञानी अपनी बाह्यदृष्टि से ऐसा मानता है कि घर छोड़ूँ और जंगल जाऊँ तो शान्ति मिले; परन्तु अरे भाई ! शान्ति जंगल में है या आत्मा में ? तुझे मकान अनिष्ट है या तेरा मोह ? तू मोह को तो छोड़ता नहीं और मकान को अनिष्ट मानकर छोड़ना चाहता है। सो हे भाई ! तेरा ऐसा अभिप्राय मिथ्या है और ऐसा मिथ्या अभिप्राय से भरा हुआ त्याग

द्वेष से भरा हुआ है, वीतराग भाव से रहित है; अत: इससे शान्ति का वेदन नहीं हो सकता। **– वीतराग-विज्ञान : अप्रैल 1984, पृष्ठ 24**

(93) जैनदर्शन कोई वेश या सम्प्रदाय नहीं है। प्रत्येक जीव की शक्ति परमात्मस्वरूप है। ऐसा बताने वाले धर्म को जैनदर्शन कहें, विश्वदर्शन कहें, वस्तुदर्शन कहें या आत्मदर्शन कहें – सब एक है।

(94) हे भाई ! यह शरीर तो धूल का ढेला है, आत्मा का सुख इसमें कुछ भी नहीं है। इस शरीर पर से दृष्टि-ममता हटाकर, देह से भिन्न अपने चैतन्य स्वभाव में परम प्रेम से एकाग्र होने पर ही उसमें से अतीन्द्रिय शान्ति का झरना आता है। अत: हे मुमुक्षु जीवों ! यदि शान्ति चाहते हो तो आत्मा के स्वभाव का आश्रय ग्रहण करो, संयोग का आश्रय छोड़ो।

(95) कैसी विचित्र बात है कि जो कार्य इससे हो नहीं सकता, जिसे ये कर नहीं सकता, उसका तो तुरन्त विश्वास करके पुरुषार्थ करता है; परन्तु जो वस्तु अपनी है, अपने से हो सकती है, उसका न विश्वास करता है और न उसका पुरुषार्थ करता है। इसलिए भाई ! तू तो ऐसी श्रद्धा कर कि मैं तो संसार-सागर से तिरने के मार्ग पर ही जा रहा हूँ, मेरा संसार-भ्रमण समाप्ति पर है। अत: भवरहित स्वभाव की दृष्टि करके अपना हित कर लेना चाहिए।

(96) अरे भाई ! अब भी तुझे जन्म-मरण की थकावट आई है या नहीं ? यदि थक गया हो तो उस जन्म-मरण से छूटने के लिए चैतन्य की शरण में विश्राम ले। अरे, विश्राम किसको अच्छा नहीं लगता ? जिसे थकावट नहीं आई हो वह विश्राम नहीं ढूंढता, परन्तु जिसे अन्तर में थकावट आई हो उसे तो अन्तर में विश्राम करना ही चाहिए। **– वीतराग-विज्ञान : अप्रैल 1985, पृष्ठ 9**

सम्पादकीय

तत्त्वार्थमणिप्रदीप

(आचार्य उमास्वामी कृत तत्त्वार्थसूत्र की टीका)

(गतांक से आगे....)

भरतादि क्षेत्रों का विस्तार

अब तक भरतादि क्षेत्रों एवं हिमवन आदि पर्वतों की विविध प्रकार से चर्चा हुई। अब **उनके विस्तार की चर्चा करते हैं।**

तत्संबंधी सूत्र इसप्रकार हैं –

भरतः षड्विंशतिपंचयोजनशतविस्तारः षट्चैकोनविंशतिभागा-योजनस्य ।।२४।।

तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः ।।२५।।

उत्तरा दक्षिणतुल्याः ।।२६।।

भरतक्षेत्र का विस्तार पाँच सौ छब्बीस योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से ६ भाग अधिक है।

विदेहक्षेत्र तक के पर्वत और क्षेत्र, भरतक्षेत्र से दूने-दूने विस्तार वाले हैं।

विदेह क्षेत्र से उत्तर के तीन पर्वत और तीन क्षेत्र, दक्षिण के पर्वत और क्षेत्रों के समान विस्तारवाले हैं।

भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र में प्रत्येक का विस्तार पाँच सौ छब्बीस एवं छह बटा उन्नीस ($५२६\frac{६}{१९}$) योजन है।

हिमवन पर्वत और शिखरिण पर्वत में प्रत्येक का विस्तार एक हजार बावन एवं बारह बटा उन्नीस ($१०५२\frac{१२}{१९}$) योजन है।

हैमवत क्षेत्र और हैरण्यवत क्षेत्र में प्रत्येक का विस्तार दो हजार एक सौ पाँच एवं पाँच बटा उन्नीस ($२१०५\frac{५}{१९}$) योजन है।

महाहिमवन पर्वत और रुक्मि पर्वत में प्रत्येक का विस्तार चार हजार दो सौ दस एवं दस बटा उन्नीस ($४२१०\frac{१०}{१९}$) योजन है।

हरि क्षेत्र और रम्यक् क्षेत्र में प्रत्येक का विस्तार आठ हजार चार सौ इक्कीस एवं एक बटा उन्नीस ($८४२१\frac{१}{१९}$) योजन है।

निषध पर्वत और नील पर्वत में प्रत्येक का विस्तार सोलह हजार आठ सौ ब्यालीस एवं दो बटा उन्नीस ($१६८४२\frac{२}{१९}$) योजन है।

विदेह क्षेत्र का विस्तार तैंतीस हजार छह सौ चौरासी एवं चार बटा उन्नीस ($३३६८४\frac{४}{१९}$) योजन है।।२४-२६।।

कालचक्र

उक्त **क्षेत्रों में काल का परिवर्तन किसप्रकार होता है ?** अब आगामी सूत्रों में यह बताते हैं –

भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ।।२७।।

ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ।।२८।।

एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः ।।२९।।

तथोत्तराः ।।३०।।

विदेहेषु संख्येयकालाः ।।३१।।

भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ।।३२।।

छह कालों से युक्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के द्वारा भरत और ऐरावत क्षेत्र में जीवों के अनुभवादि की वृद्धि-हानि होती रहती है।

भरत और ऐरावत क्षेत्र को छोड़कर दूसरे क्षेत्रों में एक ही अवस्था रहती है, उनमें काल का परिवर्तन नहीं होता।

हैमवत, हरिवर्ष और देवकुरु के मनुष्य, तिर्यंच क्रम से एक पल्य, दो पल्य और तीन पल्य की आयुवाले होते हैं।

उत्तर के क्षेत्रों में रहनेवाले मनुष्य भी दक्षिण में स्थित हैमवतादि के मनुष्यों के समान आयुवाले होते हैं।

विदेह क्षेत्रों में मनुष्य और तिर्यंचों की आयु संख्यात वर्ष की होती है।

भरतक्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप का एक सौ नब्बेवाँ भाग है।

प्रश्न – भरतक्षेत्र का विस्तार पहले पाँच सौ छब्बीस एवं छह बटा उन्नीस ($५२६\frac{६}{१९}$) योजन बताया था और अब यहाँ जम्बूद्वीप का एक सौ नब्बेवाँ (१९०वाँ) भाग बता रहे हैं – यह भिन्नता क्यों है ?

उत्तर – दोनों में कोई अन्तर नहीं है; क्योंकि १ लाख में १९० का भाग दो तो उत्तर पाँच सौ छब्बीस एवं छह बटा उन्नीस ($५२६^{६}/_{१९}$) ही आता है। मात्र सरलता के लिए यह सूत्र लिखा गया है।

दूसरी बात यह है कि जहाँ $५२६^{६}/_{१९}$ योजन लिखा है, वहाँ भरत क्षेत्र के विस्तार का नाप बताया है और यहाँ जम्बूद्वीप का १९०वाँ भाग लिखकर जम्बूद्वीप के विस्तार से भरतक्षेत्र के विस्तार की तुलना की गई है।

जहाँ **उत्सर्पिणी काल में क्रमश: विकास की प्रक्रिया है, वहाँ अवसर्पिणी काल में क्रमश: ह्रास की प्रक्रिया है।** उत्सर्पिणी में प्राणियों के बल, आयु और शरीरादि का प्रमाण क्रमश: बढ़ता जाता है और अवसर्पिणी में उसी क्रम से घटता जाता है। इसप्रकार यदि **उत्सर्पिणी बढ़ने का नाम है तो अवसर्पिणी घटने का। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दोनों में प्रत्येक का काल दस-दस कोड़ाकोड़ी सागर है।**

इसप्रकार कुल मिलाकर **बीस कोड़ाकोड़ी सागर का एक कल्पकाल** होता है। प्रत्येक कल्पकाल में तीर्थंकरों की **दो चौबीसी होती हैं।** एक अवसर्पिणी में और एक उत्सर्पिणी में।

अवसर्पिणी काल के छह भेद हैं – (१) सुखमा-सुखमा (२) सुखमा (३) सुखमा-दु:खमा (४) दु:खमा-सुखमा (५) दु:खमा (६) दु:खमा-दु:खमा।

इसीप्रकार उत्सर्पिणी भी छह प्रकार का होता है – (६) दु:खमा-दु:खमा (५) दु:खमा (४) दु:खमा-सुखमा (३) सुखमा-दु:खमा (२) सुखमा (१) सुखमा-सुखमा।

उक्त कालों में सुख-दु:ख की स्थिति उनके नामानुसार ही होती है। यहाँ सुख शब्द लौकिक सुख (भोग) के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

तृतीय काल तक भोग की ही प्रधानता रहती है, यहाँ तक कि आध्यात्मिक उन्नति के तो अवसर ही प्राप्त नहीं होते।

पहला काल (सुखमा-सुखमा) **चार कोड़ाकोड़ी सागर** का है। दूसरा काल (सुखमा) **तीन कोड़ाकोड़ी सागर** का है। तीसरा काल (सुखमा-दु:खमा) **दो कोड़ाकोड़ी सागर का** है। चौथा काल (दु:खमा-सुखमा) **ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर का** है। पाँचवाँ काल (दु:खमा) **इक्कीस हजार वर्ष का** तथा छठवाँ काल (दु:खमा-दु:खमा) भी **इक्कीस हजार वर्ष का** है।

तीर्थंकरों की उत्पत्ति चतुर्थकाल (दु:खमा-सुखमा) में ही होती है और मुक्तिमार्ग भी चतुर्थकाल में ही चलता है। इस दृष्टि से चतुर्थकाल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

तृतीय काल में चौदह कुलकर और चतुर्थ काल में त्रेसठ शलाका महापुरुष होते हैं। त्रेसठ शलाका महापुरुष निम्नानुसार हैं – **२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ९ बलभद्र।**

वर्तमान में अवसर्पिणी काल का पंचमकाल चल रहा है। इसमें न तो कुलकर ही होते हैं और न त्रेसठ शलाका महापुरुषों की उत्पत्ति ही होती है। किसी को मुक्ति (मोक्ष) की भी प्राप्ति नहीं होती है। **चतुर्थकाल में जो त्रेसठ शलाका महापुरुष हुए हैं, विशेषकर उनके चरित्रों का वर्णन ही जैनपुराणों का कथ्य है।**

इसप्रकार अबतक अनन्त कल्पकाल बीत चुके हैं और भविष्य में अनन्त होंगे। तदनुसार तीर्थंकरों की अनन्त चौबीसियाँ इस भरत क्षेत्र में हो चुकी हैं और भविष्य में अनन्त और होंगी। ऐसी ही व्यवस्था ऐरावत क्षेत्र की है।

विदेह क्षेत्र की व्यवस्था इससे कुछ भिन्न प्रकार की है। वहाँ सदा चतुर्थकाल के आरंभ जैसी स्थिति रहती है।

अभी भरत-ऐरावत क्षेत्र में **हुण्डावसर्पिणी** काल चल रहा है। असंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल बीत जाने पर एक **हुण्डावसर्पिणी** काल आता है। **इस काल में कुछ अनहोनी बातें होती हैं।**

यथा – तृतीय काल में तीर्थंकर की उत्पत्ति, तृतीय काल में मुक्ति, तीर्थंकरों के उपसर्ग, चक्रवर्ती का मानभंग आदि।

छठवें दु:खमा-दु:खमा काल के अन्त में प्रलयकाल आता है।

सम्पूर्ण आर्यखंड में प्रलय होने पर मनुष्यों के बहत्तर युगल अथवा अनेक मनुष्य शेष रह जाते हैं। ये विजयार्द्ध गुफा में चले जाते हैं।

प्रलयकाल में क्रम से **सरस, विरस, तीक्ष्ण, रूक्ष, उष्ण, विष और क्षार मेघ सात-सात दिन बरसते हैं। इसप्रकार ४९ दिन तक होता है।**

इसप्रकार दस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण **अवसर्पिणी** का काल समाप्त होता है।

इसके बाद (प्रलय के बाद) दस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण उत्पसर्पिणी काल

प्रारंभ होता है। उसमें सर्वप्रथम दु:खमा-दु:खमा नामक छठवाँ काल रहता है। इसके प्रारंभ में उनचास दिन पर्यन्त रात-दिन **क्षीरमेघ** बरसते हैं, पुन: उतने ही दिन **अमृतमेघ** बरसते हैं। पृथ्वी रुक्षता को छोड़ देती है। उन मेघों के माहात्म्य से वर्ण आदि गुण उत्पन्न होता है। **औषधि, वृक्ष, गुल्म, तृण आदि सरस हो जाते हैं।**

अवसर्पिणी के अन्त समय में जो युगल या अनेक मनुष्य विजयार्द्ध गुफा में प्रविष्ट हुए थे, वे गुफा से निकलकर सरस औषधि और धान्य आदि का सेवन कर अपने जीवन को सहर्ष व्यतीत करते हैं।

ये सब स्थिति भरत और ऐरावत क्षेत्र की है।

दक्षिण में स्थित हैमवत क्षेत्र की और उत्तर में स्थित हैरण्यवत क्षेत्र की स्थिति तीसरे काल (सुखमा-दु:खमा) के समान रहती है। आयु एक पल्य, ऊँचाई दो हजार धनुष, आहार एक दिन के अन्तराल से और शरीर का रंग नील कमल के समान होता है।

दक्षिण में स्थित हरि क्षेत्र में और उत्तर में स्थित रम्यक क्षेत्र की स्थिति दूसरे काल (सुखमा) के समान रहती है। आयु दो पल्य, ऊँचाई चार हजार धनुष, आहार दो दिन के अन्तराल से और शरीर का रंग शंख के समान सफेद होता है।

दक्षिण में स्थित देवकुरु क्षेत्र में और उत्तर में स्थित उत्तर कुरु क्षेत्र की स्थिति पहले काल (सुखमा-सुखमा) के समान रहती है। आयु तीन पल्य, ऊँचाई छह हजार धनुष, आहार तीन दिन के अन्तराल से और शरीर का रंग सोने के समान पीला होता है।

पूर्व एवं पश्चिम विदेह क्षेत्र के ३२ देशों की स्थिति सदा चतुर्थ काल (दु:खमा-सुखमा) के आरंभ के समान रहती है।[१]

ऊँचाई पाँच सौ धनुष, प्रतिदिन भोजन करनेवाले, उत्कृष्ट आयु एक कोटि पूर्व प्रमाण और जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त मात्र है।

पूर्व के संबंध में **सर्वार्थसिद्धि** नामक टीका ग्रन्थ में एक गाथा उद्धृत की गई है; जो इसप्रकार है –

पुव्वस्स दु परिमाणं सदरिं खलु कोडिसदसहस्साइं।
छप्पण्णं च सहस्सा बोद्धव्वा वासकोडीणं।।

१. राजवार्तिक, भाग-१, पृष्ठ ३८८

एक पूर्व का परिमाण (नाप) सत्तर लाख करोड़ और छप्पन हजार करोड़ वर्ष जानना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि एक पूर्व, सत्तर लाख छप्पन हजार करोड़ वर्ष का होता है।।२७-३२।।

धातकीखण्ड एवं पुष्करार्द्ध द्वीप

जम्बूद्वीप की चर्चा होने के उपरान्त अब **दूसरे द्वीप धातकीखण्ड और तीसरे द्वीप पुष्करार्द्ध की चर्चा करते हैं –**

द्विर्धातकीखण्डे।।३३।।

पुष्करार्द्धे च।।३४।।

प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्या:।।३५।।

धातकीखण्ड नाम के दूसरे द्वीप में क्षेत्र, कुलाचल, मेरु, नदी इत्यादि सब पदार्थों की रचना जम्बूद्वीप से दूनी-दूनी है।

पुष्करार्द्ध द्वीप में भी सब रचना जम्बूद्वीप की रचना से दूनी-दूनी है।

मानुषोत्तर पर्वत तक अर्थात् अढ़ाई द्वीप में ही मनुष्य होते हैं, मानुषोत्तर पर्वत से परे ऋद्धिधारी मुनि या विद्याधर भी नहीं जा सकते।

अपने सिरे से लवणोदधि और कालोदधि नामक समुद्रों को स्पर्श करनेवाले और दक्षिण से उत्तर तक लम्बे इष्वाकार नामक दो पर्वतों से विभक्त होकर धातकीखण्ड द्वीप के दो भाग हो जाते हैं – पूर्व धातकीखण्ड और पश्चिम धातकीखण्ड।

इन पूर्व और पश्चिम दोनों खण्डों के मध्य में दो मेरु पर्वत हैं। इन दोनों के दोनों ओर भरत आदि क्षेत्र और हिमवन आदि पर्वत हैं।

इसप्रकार दो भरत दो हिमवन इत्यादि रूप से जम्बूद्वीप से धातकीखण्ड द्वीप में दूनी संख्या जाननी चाहिए।

जम्बूद्वीप में हिमवन आदि पर्वतों का जो विस्तार है, धातकीखण्ड द्वीप में हिमवन आदि पर्वतों का उससे दूना विस्तार है। **जम्बूद्वीप में जहाँ जम्बू वृक्ष स्थित है, धातकीखण्डद्वीप में धातकी वृक्ष स्थित है। इसके संबंध से द्वीप का नाम धातकीखण्ड प्रसिद्ध है।** इसको घेरे हुए कालोदधि समुद्र है; जिसका विस्तार आठ लाख योजन है। कालोदधि को घेरे हुए पुष्करद्वीप है, जिसका

विस्तार सोलह लाख योजन है।

जिसप्रकार धातकीखण्ड द्वीप में हिमवन आदि का विस्तार कहा है; उसीप्रकार पुष्करार्ध में हिमवन आदि का विस्तार दूना बतलाया है। नाम वे ही हैं। दो इष्वाकार और दो मेरु पर्वत पहले के समान जानना चाहिए। जहाँ पर जम्बूद्वीप में जम्बूवृक्ष है, वहाँ पुष्करद्वीप में पुष्करवृक्ष हैं। इसीलिए इस द्वीप का पुष्करद्वीप यह नाम रूढ़ हुआ है।

ढ़ाई द्वीप और इनके मध्य में आनेवाले दो समुद्र यह मनुष्यलोक है। मनुष्य इसी क्षेत्र में पाये जाते हैं। मानुषोत्तर पर्वत मनुष्यलोक की सीमा पर स्थित होने से इसका मानुषोत्तर यह नाम सार्थक है।

मनुष्य इसी क्षेत्र में रहते हैं, उनका बाहर जाना सम्भव नहीं। इसका यह अभिप्राय है कि गर्भ में आने के बाद मरणपर्यन्त औदारिक शरीर या आहारक शरीर के साथ वे इस क्षेत्र से बाहर नहीं जा सकते।

सम्मूर्च्छन मनुष्य तो आर्यखण्ड की महिलाओं के औदारिक शरीर के आश्रय से होते हैं, इसलिए उनका मनुष्यलोक के बाहर जाना सम्भव नहीं है।

पर इसका अर्थ यह नहीं है कि किसी भी अवस्था में मनुष्य जीव इस क्षेत्र के बाहर नहीं पाये जाते हैं। ऐसी तीन अवस्थाएँ हैं, जिनके होने पर मनुष्य जीव इस क्षेत्र के भी बाहर पाये जाते हैं।

१. जो मनुष्य मरकर ढाई द्वीप के बाहर उत्पन्न होनेवाले हैं, वे यदि मरण के पहले मारणान्तिक समुद्घात करते हैं तो इसके द्वारा उनके आत्मप्रदेशों का ढाई द्वीप के बाहर गमन देखा जाता है।

२. ढाई द्वीप के बाहर निवास करनेवाले जो जीव मरकर मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं, उनके मनुष्यायु और मनुष्य गतिनाम कर्म का उदय होने पर भी ढाई द्वीप में प्रवेश करने के पूर्व तक उनका इस क्षेत्र के बाहर अस्तित्व देखा जाता है।

३. केवलिसमुद्घात के समय उनके आत्मप्रदेशों का मनुष्यलोक के बाहर अस्तित्व देखा जाता है।

इन तीन अपवादों को छोड़कर और किसी अवस्था में मनुष्यों का मनुष्यलोक के बाहर अस्तित्व नहीं देखा जाता।

ढाई द्वीप में पाँच मेरु पर्वत हैं, जिनके नाम सुदर्शन मेरु, विजय मेरु,

अचल मेरु, मंदर मेरु और विद्युन्माली मेरु हैं।

जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में सुदर्शन नामक मेरु है; इसे सुमेरु पर्वत भी कहते हैं।

पूर्व धातकीखण्ड के विदेह क्षेत्र में विजय नामक मेरु है। पश्चिम धातकीखण्ड के विदेह क्षेत्र में अचल नामक मेरु है।

पूर्व पुष्करार्ध के विदेह क्षेत्र में मंदर नामक मेरु है। पश्चिम पुष्करार्ध के विदेह क्षेत्र में विद्युन्माली नामक मेरु है।

इन सबकी वास्तविक स्थिति को निम्नांकित ढाईद्वीप के मानचित्र से भलीभाँति समझा जा सकता है।।३३-३५।।

मनुष्यों के प्रकार

ढाईद्वीप में रहनेवाले मनुष्यों की चर्चा के संदर्भ में अब उनके अनेक प्रकारों की चर्चा करते हैं –

आर्या म्लेच्छाश्च ।।३६।।

आर्य और म्लेच्छ के भेद से मनुष्य दो प्रकार के हैं।

मनुष्य दो प्रकार के हैं – आर्य और म्लेच्छ। आर्य मनुष्य भी दो प्रकार के होते हैं – ऋद्धिधारी और बिना ऋद्धिवाले।

जो आठ प्रकार की चौंसठ ऋद्धियों में से किसी एक या एकाधिक ऋद्धि के धारी होते हैं; उन्हें ऋद्धिप्राप्त आर्य कहते हैं। जिनको कोई ऋद्धि प्राप्त नहीं है, वे बिना ऋद्धिवाले आर्य हैं।

बिना ऋद्धिवाले आर्य पाँच प्रकार के होते हैं – क्षेत्र आर्य, जाति आर्य, कर्म आर्य, चारित्र आर्य और दर्शन आर्य।

काशी, कोशल आदि आर्य क्षेत्रों में जन्म लेनेवाले मनुष्य **क्षेत्र आर्य** हैं।

इक्ष्वाकु, भोज आदि वंशों में जन्म लेनेवाले मनुष्य **जाति आर्य** हैं।

कर्म आर्य तीन प्रकार के होते हैं – **सावद्यकर्म आर्य, अल्प सावद्यकर्म आर्य और असावद्य कर्म आर्य।**

सावद्य कर्म आर्य छह प्रकार के होते हैं –

१. जो तलवार आदि अस्त्र-शस्त्रों के द्वारा रक्षा अथवा युद्ध आदि करने की जीविका करते हैं, वे **असिकर्म आर्य** हैं।

२. जो आय-व्यय आदि लिखने की आजीविका करते हैं, वे **मसिकर्म**

आर्य हैं।

३. जो खेती के द्वारा आजीविका करते हैं, वे **कृषिकर्म आर्य** हैं।

४. जो विविध कलाओं में प्रवीण हैं और उनसे ही आजीविका करते हैं, वे **विद्याकर्म आर्य** हैं।

५. धोबी, नाई, कुम्हार, लुहार, सुनार वगैरह **शिल्पकर्म आर्य** हैं।

६. वणिज/व्यापार करनेवाले **वणिक् कर्म आर्य** हैं।

ये छहों सावद्य कर्म आर्य के होते हैं। उनमें जो अणुव्रती श्रावक होते हैं, वे **अल्प सावद्य कर्म आर्य** होते हैं और पूर्ण संयमी साधु **असावद्य कर्म आर्य** हैं।

चारित्र आर्य दो प्रकार के होते हैं –

१. जो बिना उपदेश के स्वयं ही चारित्र का पालन करते हैं।

२. जो पर के उपदेश से चारित्र का पालन करते हैं।

सम्यग्दृष्टि मनुष्य दर्शन आर्य हैं।

म्लेच्छ दो प्रकार के होते हैं – **१. अन्तर्द्वीपज और २. कर्मभूमिज।**

१. लवण समुद्र और कालोदधि समुद्र के भीतर जो छ्यानवे द्वीप हैं, उनके वासी मनुष्य, **अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ** कहे जाते हैं। उनकी आकृति आहार-विहार सभी असंस्कृत होता है।

२. म्लेच्छ खण्डों के अधिवासी मनुष्य, **कर्मभूमिज म्लेच्छ** कहे जाते हैं।।३६।।

कर्मभूमि और भोगभूमि

अब **अढाईद्वीप में कर्मभूमियाँ और भोगभूमियाँ कहाँ-कहाँ हैं –** यह स्पष्ट करते हैं।

भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तर-
कुरुभ्यः ।।३७।।

पाँच मेरु संबंधी पाँच भरत, पाँच ऐरावत, देवकुरु तथा उत्तरकुरु – इन दोनों को छोड़कर पाँच विदेह – इसप्रकार ढाईद्वीप में कुल पन्द्रह कर्मभूमियाँ हैं।

जहाँ शुभाशुभ कर्मों (कार्य) को करने की और आठ कर्मों का नाश करने की प्रधानता हो, उसे **कर्मभूमि** कहते हैं।

कर्मभूमि के जीव पाप का उत्कृष्ट पुरुषार्थ करें तो **सातवें नरक तक जा सकते हैं।** पुण्य का उत्कृष्ट पुरुषार्थ करें तो **सर्वार्थसिद्धि में जा सकते हैं** और कर्म के नाश का पुरुषार्थ करें तो **मोक्ष भी जा सकते हैं।**

चारों गतियों के और पंचमगति/मोक्ष का रास्ता इन कर्मभूमियों से खुलता है।

भोगभूमि में कर्म की नहीं भोगने की प्रधानता होती है। वहाँ आजीविका के लिए कुछ करना नहीं पड़ता; **सबकुछ भोग सामग्री कल्पवृक्षों से उपलब्ध हो जाती है।**

भोगभूमि के जीव मरकर नियम से देवगति में ही जाते हैं। न तो वे नरकादि गतियों में जाते हैं और न मोक्ष में।

ढाईद्वीप में ये कर्मभूमियाँ १५ और भोगभूमियाँ ३० हैं।

पाँच भरत, पाँच ऐरावत, देवकुरु और उत्तरकुरु को छोड़कर ५ विदेह – ये १५ कर्मभूमियाँ हैं। इनका खुलासा इसप्रकार है –

जम्बूद्वीप में एक भरत, एक ऐरावत, देवकुरु और उत्तरकुरु को छोड़कर एक विदेह – **ये तीन।**

धातकीखण्डद्वीप में दो भरत, दो ऐरावत, देवकुरु और उत्तरकुरु को छोड़कर दो विदेह – **ये छह।**

पुष्करार्ध में दो भरत, दो ऐरावत, देवकुरु और उत्तरकुरु को छोड़कर दो विदेह – **ये छह।**

इसप्रकार ये १५ कर्मभूमियाँ हैं।

देवकुरु, उत्तरकुरु, हैमवत, हरिवर्ष, रम्यक और हैरण्यवत – ये **भोगभूमियाँ** कही जाती हैं। इसका खुलासा इसप्रकार है –

जम्बूद्वीप में एक हैमवत, एक हरि, एक रम्यक, एक हैरण्यवत, एक देवकुरु और एक उत्तरकुरु – **ये छह।**

धातकीखण्डद्वीप में दो हैमवत, दो हरि, दो रम्यक, दो हैरण्यवत, दो देवकुरु और दो उत्तरकुरु – **ये बारह।**

पुष्करार्द्धद्वीप में दो हैमवत, दो हरि, दो रम्यक, दो हैरण्यवत, दो देवकुरु और दो उत्तरकुरु – **ये बारह।**

इसप्रकार ये ३० भोगभूमियाँ हैं।

इसप्रकार ढाईद्वीप में १५ कर्मभूमियाँ और ३० भोगभूमियाँ – कुल ४५ भूमियाँ हैं।।३७।।

मनुष्य और तिर्यंचों की स्थिति

अब अध्याय के अन्त में मनुष्य और तिर्यंचों की आयुकर्म की स्थिति का स्वरूप स्पष्ट करते हैं –

नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते।।३८।।

तिर्यग्योनिजानां च।।३९।।

मनुष्यों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य और जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त की है।

मनुष्यों की स्थिति के समान ही तिर्यंचों की भी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है।

पल्यों का स्वरूप सागर के स्वरूप के साथ स्पष्ट किया जा चुका है।

पल्य तीन प्रकार के होते हैं– व्यवहारपल्य, उद्धारपल्य और अद्धापल्य।

इन तीन पल्यों में से पहला **व्यवहारपल्य** तो केवल दो पल्यों के निर्माण का मूल है, उसी के आधार पर उद्धारपल्य और अद्धापल्य बनते हैं। इसी से इसे व्यवहारपल्य का नाम दिया गया है।

उद्धारपल्य के रोमों के द्वारा द्वीप और समुद्रों की संख्या गिनी जाती है और **अद्धापल्य के द्वारा नारकियों की, तिर्यंचों की, देवों और मनुष्यों की आयु, कर्मों की स्थिति आदि जानी जाती है।**

उक्त सूत्रों में मनुष्य और तिर्यंचों की आयु की उत्कृष्ट स्थिति **तीन पल्य** की कही गई है। उसमें पल्य के रूप में अद्धापल्य को जानना चाहिए।

दस कोड़ाकोड़ी अद्धापल्य का एक अद्धा सागर होता है।

तिर्यंच तीन प्रकार के होते हैं – एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय।

एकेन्द्रियों में शुद्ध पृथिवीकायिक जीवों की आयु **बारह हजार वर्ष** होती है और खर पृथिवीकाय की आयु **बाईस हजार वर्ष** होती है।

जलकायिक जीवों की आयु **सात हजार वर्ष,** वायुकायिक की **तीन हजार वर्ष** और वनस्पतिकायिक की **दस हजार वर्ष** उत्कृष्ट आयु होती है। अग्निकायिक की आयु **तीन दिन-रात** होती है।

विकलेन्द्रियों में, दो इन्द्रियों की उत्कृष्ट आयु **बारह वर्ष,** तेइन्द्रियों की **उनचास रात-दिन** और चौइन्द्रियों की **छह मास** होती है।

पंचेन्द्रियों में जलचर जीवों की उत्कृष्ट आयु **एक पूर्व कोटि,** नकुल वगैरह की **नौ पूर्वांग,** सर्पों की **बयालीस हजार वर्ष,** पक्षियों की **बहत्तर हजार वर्ष** और चौपायों की **तीन पल्य** होती है।

सभी की जघन्य आयु एक अन्तर्मुहूर्त की होती है।

इसप्रकार इस तीसरे अध्याय में नारकी, मनुष्य और तिर्यंचों तथा कुछ देवों के रहने के स्थान आदि की चर्चा हुई। इसी प्रसंग में अधोलोक और मध्यलोक (तिर्यग लोक) की भी चर्चा हुई।।३८-३९।।

इसप्रकार यहाँ तीसरा अध्याय समाप्त होता है।

चौथा अध्याय

पृष्ठभूमि

चतुर्गति के जीव कहाँ-कहाँ रहते हैं ? – इस संदर्भ में तीसरे अध्याय में तीन लोक की चर्चा आरंभ हुई थी; क्योंकि एक आकाश (अलोकाकाश) को छोड़कर शेष पाँच द्रव्य तो लोकाकाश में ही रहते हैं। लोकाकाश तीन लोकों में विभाजित है।

नारकी अधोलोक में रहते हैं और **मनुष्य मध्यलोक** में; किन्तु **तिर्यंच और देव तीनों लोकों में पाये जाते हैं।** पाँचों सूक्ष्म स्थावरकायिक जीव भी तिर्यंच ही हैं और वे सर्वत्र पाये ही जाते हैं।

देवों में भी कुछ व्यन्तर और भवनवासी प्रथम नरक के खर और पंक भाग के रूप में अधोलोक में तथा कुछ व्यन्तर मध्यलोक में रहते हैं।

ज्योतिषी तो मध्यलोक में रहते ही हैं। **एक वैमानिकदेव ही हैं; जो ऊर्ध्वलोक में रहते हैं, स्वर्गों में रहते हैं।**

अधोलोक और मध्यलोक की चर्चा तीसरे अध्याय में हो चुकी है। यद्यपि अब ऊर्ध्वलोक की चर्चा प्रसंग प्राप्त है; तथापि अभी देवगति के जीवों की चर्चा भी बहुत कुछ शेष है; अत: **सर्वप्रथम देवों की चर्चा आरंभ करते हैं।**

देवगति

अब दिव्य भोगों को भोगनेवाले देवों की चर्चा करते हैं –

देवाश्चतुर्णिकायाः ।।१।।

आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ।।२।।

देवों के चार निकाय होते हैं अथवा देव चार निकायवाले हैं।

आरंभ के तीन निकायों में पीत है अन्त में जिनके ऐसी चार लेश्यायें होती हैं। तात्पर्य यह है कि भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषियों में कृष्ण, नील, कापोत और पीत – ये चार लेश्यायें होती हैं।

किसी भी **वस्तु के समूह को काय कहते हैं और कायों के समूह को निकाय कहते हैं। यहाँ देवों के समूहों के समूहों की चर्चा है; अतः उन्हें चार निकायवाला कहा है।**

देवगति नामकर्म के उदय से जो अनेक प्रकार की बाह्य विभूति से **द्वीप-समुद्रादि अनेक स्थानों में इच्छानुसार क्रीड़ा करते हैं; वे देव कहलाते हैं।**

वे देव चार प्रकार के होते हैं – **१. भवनवासी, २. व्यंतर, ३. ज्योतिषी और ४. वैमानिक।**

कषाय से अनुरंजित योग प्रवृत्ति को **लेश्या** कहते हैं। ये लेश्यायें छह प्रकार की होती हैं; जिनके नाम क्रमशः इसप्रकार हैं –

१. कृष्ण, २. नील, ३. कापोत, ४. पीत, ५. पद्म और ६. शुक्ल।

द्रव्य लेश्या तो नामानुसार ही होती है। तात्पर्य यह है कि वर्ण की अपेक्षा कृष्ण लेश्यावालों के शरीर का रंग **भौंरे के समान काला।** नील लेश्यावालों का रंग **नीलमणि के समान नीला।** कापोत लेश्यावालों का रंग **कबूतर के समान सलेटी।** पीत लेश्यावालों का रंग **स्वर्ण के समान पीला अथवा सुनहरी।** पद्म लेश्यावालों का रंग **कमल के समान** और शुक्ल लेश्यावालों का रंग **शंख के समान सफेद** होता है।

भाव लेश्या संक्लेश और विशुद्ध परिणामों के तारतम्यरूप है।

कृष्ण, नील और कापोत – ये तीन लेश्यायें **अशुभभावरूप हैं, संक्लेश परिणाम के तारतम्यरूप हैं।**

पीत, पद्म और शुक्ल लेश्यायें **शुभभावरूप हैं, विशुद्ध परिणाम के तारतम्यरूप हैं।**

तात्पर्य यह है कि कृष्ण लेश्या अशुभतम संक्लेशरूप है, नील लेश्या अशुभतर संक्लेशरूप है और कापोत लेश्या अशुभ संक्लेशरूप है।

इसीप्रकार पीत लेश्या शुभ विशुद्धभावरूप है, पद्म लेश्या शुभतर विशुद्धभावरूप है और शुक्ल लेश्या शुभतम विशुद्धभावरूप है।

इन लेश्याओं के स्वरूप को हम निम्नांकित उदाहरण से समझ सकते हैं –

छह व्यक्ति एक जंगल में भटक जाते हैं। भूखे-प्यासे वे लोग पके हुए आमों से लदे वृक्ष को देखकर इसप्रकार सोचते हैं –

१. कृष्ण लेश्या के अशुभतम परिणामोंवाला सोचता है कि मैं इस पेड़ को जड़ से उखाड़ कर इसके फल खाऊँगा। २. नील लेश्या के अशुभतर परिणामोंवाला सोचता है कि मैं डाली को काट कर अपना पेट भरूँगा। ३. कापोत लेश्या के अशुभ परिणामोंवाला सोचता है कि नहीं मैं तो टहनियों को काटकर अपना पेट भर लूँगा।

४. शुभभावरूप पीत लेश्यावाला सोचता है कि मैं तो गुच्छे को तोड़कर अपनी भूख मिटा लूँगा। ५. शुभतर पद्म लेश्यावाला सोचता है कि मैं तो मात्र पके-पके फल ही तोडूँगा। ६. पर शुभतम शुक्ल लेश्यावाला सोचता है कि मैं तो स्वयं ही टूटे हुए जमीन पर पड़े फलों से ही अपना काम चला लूँगा।

ध्यान रहे पेट तो सभी को भरना है, भूख तो सभी को मिटाना है; पर उनके परिणामों में जो अन्तर है, वही लेश्याओं के स्वरूप में अंतर है।

ध्यान रहे, आरंभ की तीन निकायवाले भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवों की पर्याप्त अवस्था में तो एकमात्र पीत लेश्या ही होती है; किन्तु अपर्याप्त अवस्था में आरंभ की तीन अशुभ लेश्यायें पाई जाती हैं।।१-२।। **(क्रमशः)**

परीक्षा तिथि निश्चित - प्रवेश फार्म शीघ्र भेजें

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, ए-4, बापूनगर, जयपुर 302015 (राज.) की शीतकालीन परीक्षा तिथि 25, 26, 27 जनवरी 2015 निश्चित की गई है। जिन परीक्षा केन्द्रों ने अभी तक छात्र प्रवेश फार्म भरकर जयपुर कार्यालय को नहीं भेजे हैं, कृपया वे तत्काल भेजने का कष्ट करें। – **ओमप्रकाश आचार्य, श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड**

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो – वीडियो प्रवचन साहित्य एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिये अवश्य देखें –

वेबसाईट – www.vitragvani.com

संपर्क सूत्र-श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

Ph.: 022-26130820, 26104912, E-Mail- info@vitragvani.com

छहढाला प्रवचन

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में अन्तर

सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न आराधौ।
लक्षण श्रद्धा जानि, दूहू में भेद अबाधौ।।
सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई।
युगपत् होते हू, प्रकाश दीपक तैं होई।।२।।

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान पण्डित दौलतरामजीकृत छहढाला की चौथी ढाल पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

(गतांक से आगे....)

आत्मा का अस्तित्व माने, किन्तु उसकी पर्याय का कारण परद्रव्य को माने अथवा आत्मा को दूसरे के कार्य का कारण माने अथवा आत्मा की मोक्षदशा का कारण राग को माने, तो उसको कारण विपरीतता है, सच्चा ज्ञान नहीं है।

आत्मा है – ऐसा तो कहे, किन्तु उसे ईश्वर ने बनाया है – ऐसा माने अथवा पृथ्वी आदि पंचभूत के सहयोग से आत्मा बना है – ऐसा माने अथवा सर्वव्यापक ब्रह्मा माने, आत्मा का पर से भिन्न स्वतंत्र अस्तित्व न माने तो उसको स्वरूप विपरीतता है अर्थात् सच्चा ज्ञान नहीं है।

गुण और गुणी को सर्वथा भेद माने या सर्वथा अभेद माने तो उसको भेदाभेद विपरीतता है अथवा दूसरे ब्रह्मा के साथ इस आत्मा को अभेद मानना या ज्ञान को आत्मा से भिन्न मानना, यह भी विपरीतता है – वस्तु का सच्चा ज्ञान नहीं है।

इसप्रकार अज्ञानी जो कुछ जानता है, उसमें उसको किसी न किसी प्रकार की विपरीतता होने से उसका सभी जानपना मिथ्याज्ञान ही है, वह मोक्ष साधने के लिए कार्यकारी नहीं है।

ज्ञान में मिथ्या श्रद्धा के कारण मिथ्यापना है या ज्ञान में स्वयं कोई दोष है ? ऐसे प्रश्न के उत्तर में पण्डित टोडरमलजी कहते हैं कि अज्ञानी के ज्ञान में भी भूल है; क्योंकि ज्ञान में जानपना होने पर भी वह ज्ञान अपने स्व प्रयोजन को साधता

नहीं, स्व ज्ञेय को जानने की तरफ नहीं बढता – यह उसका दोष है। अज्ञानी अप्रयोजनभूत पदार्थों के जानने में तो ज्ञान को प्रवर्ताता है, किन्तु जिससे अपना प्रयोजन सिद्ध हो – ऐसे आत्मा का ज्ञान तथा स्व-पर का भेदज्ञान तो वह नहीं करता, इसलिए उसके ज्ञान में भी भूल है। मोक्ष के हेतुभूत स्व तत्त्व को जाननेरूप प्रयोजन को साधता न होने से वह ज्ञान मिथ्या है। भगवान के मार्गानुसार जीवादि तत्त्वों का स्वरूप बराबर पहिचानने पर अज्ञान टलता है और सच्चा ज्ञान होता है और सच्चा ज्ञान तो परम अमृत है, वह अमृत समान मोक्षसुख का साधन है, इसलिए हे भव्य जीव ! तुम इस सम्यग्ज्ञान का सेवन करो।

सम्यग्दर्शन सहित ज्ञान अपने आत्मा को पर से भिन्न चिदानन्द स्वरूप जैसा है, वैसा स्वसंवेदनपूर्वक अतीन्द्रिय ज्ञान से जानता है। सम्यग्दर्शन के साथ वाले सम्यग्ज्ञान में आंशिक अतीन्द्रियपना हुआ है – ऐसा सम्यग्ज्ञान मोक्षमार्ग का द्वितीय रत्न है। शुद्धात्म सन्मुख उपयोग बढने पर यह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान दोनों रत्न एक साथ प्रकट होते हैं और उसी समय अनन्तानुबंधी कषायों के अभाव से स्वरूपाचरण भी होता है, ऐसा मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन होने पर चौथे गुणस्थान में प्रारम्भ होता है। जैसे सिद्धप्रभु के आनन्द का नमूना चखते हुए सम्यग्दर्शन प्रकट हुआ, वहाँ एक साथ अनन्त गुणों में निर्मल कार्य होने लगता है।

श्रद्धा-गुण की शुद्ध पर्याय सम्यग्दर्शन त्रिकाली गुण नहीं है। श्रद्धा गुण त्रिकाल है, उसकी सम्यक् पर्याय सम्यग्दर्शन है और उससे मिथ्यात्व संबंधी दोष का अभाव होने से उस सम्यग्दर्शन को शास्त्र में गुण भी कहा जाता है। मिथ्यात्व मलिनता और दोष है, उसके समक्ष सम्यग्दर्शन पवित्र गुण है, उसमें शुद्धता-निर्मलता है, इसलिए उसको गुण कहा है। उसमें अभेद आत्मा की निर्विकल्प प्रतीति है, वह मोक्षपुरी में प्रवेश होने का द्वार है।

सम्यग्ज्ञान ज्ञान गुण की पर्याय है। चौथे गुणस्थान में आत्मा की श्रद्धापूर्वक ज्ञान होने पर सम्यग्ज्ञान प्रारंभ हुआ, किन्तु वह एक साथ पूर्ण नहीं होता, केवलज्ञान होने पर पूर्ण होता है। सम्यग्ज्ञान स्व-पर को, भेद-अभेद को, शुद्ध-अशुद्ध को, जैसा है वैसा जानकर अपने आत्मा को परभावों से भिन्न साधता है।

मैं शुद्ध परिपूर्ण अभेद एक भूतार्थ आनन्दमय चैतन्यतत्त्व हूँ – ऐसे स्वसंवेदन

पूर्वक सम्यग्दृष्टि जीव आत्मा की मान्यता करता है। सम्यग्दर्शन में अपने ऐसे आत्मा का स्वीकार है। सम्यग्दर्शन पर्याय में स्वसन्मुखता है, परसन्मुखता नहीं है। क्या पर समक्ष देखने से सम्यग्दर्शन होता है? नहीं, किसी पर की सन्मुखता से, देव-गुरु की सन्मुखता से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। अपने भूतार्थ आत्मा की सन्मुखता से ही सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन पर्याय श्रद्धा गुण की है और श्रद्धा गुण आत्मा का है, ऐसी स्थिति में आत्मा के सन्मुख हुए बिना सम्यग्दर्शन पर्याय कहाँ से होगी ? श्रद्धा गुण और उसकी सम्यग्दर्शन पर्याय तो आत्मा का निज स्वरूप है, उस निजस्वरूप के सन्मुख होने पर वह स्वयं श्रद्धा गुण की निर्मल पर्यायरूप से परिणमित होता है। इस जीव का श्रद्धा गुण कहीं दूसरे किसी देव-शास्त्र-गुरु के पास नहीं है कि जिनमें से सम्यग्दर्शन पर्याय आवे। श्रद्धा जहाँ होगी, वहीं से उसकी सम्यग्दर्शन पर्याय आवेगी। श्रद्धा गुण आत्मवस्तु का है, उसकी अखण्ड प्रतीति से सम्यक्त्वरूप शुद्ध पर्याय प्रकट होगी। सम्यक्त्व की तरह सभी गुणों की शुद्ध पर्यायें भी स्वाश्रय से ही प्रकट होती हैं – ऐसा समझना चाहिए।

क्या आत्मा का कोई गुण राग में है ? नहीं, तो राग की सन्मुखता से कोई गुण प्रकट नहीं होता।

क्या आत्मा का कोई गुण निमित्त में है ? नहीं, तो निमित्त की सन्मुखता से कोई गुण प्रकट नहीं होता।

इस आत्मा का कोई गुण देव-शास्त्र-गुरु के पास है ? नहीं, तो उनकी सन्मुखता से कोई गुण प्रकट नहीं होता।

भगवान आत्मा के सर्व गुण अपने में ही हैं, अन्य किसी में नहीं, इसलिए आत्मा के अपने समक्ष देखने से ही सर्वगुण प्रकट होते हैं, पर समक्ष देखने से कोई गुण प्रकट नहीं होता। त्रिकाली गुण स्वभाव अपने में है, उसके सन्मुख होने पर ही सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ, आनन्द भी हुआ और अनन्त गुण की निर्मलता के वेदन सहित मोक्षमार्ग खुल गया, अपना आनन्दमय स्व-घर जीव ने देख लिया।

हे भाई ! यह तेरे निज घर की बात है। अपने निज घर की बात तू उत्साह से सुन। अनादि से रागादि पर के घर को अपना माना था, यहाँ सर्वज्ञ परमात्मा और संत तुझे तेरा स्व-घर बताते हैं, जिसको देखते ही आनन्द सहित सम्यग्दर्शन और

सम्यग्ज्ञान होता है तथा अन्तर में मोक्ष का दरवाजा खुल जाता है। सम्यग्दर्शन तो धर्म की मूल ईकाई है, उसको भूलकर जीव जो कुछ करे उससे जन्म-मरण का अन्त नहीं आता। इसलिए जो अनन्त काल में पहले कभी नहीं किया और जिसके प्रकट होते ही जन्म-मरण का अन्त आकर मोक्ष की ओर का परिणमन प्रारंभ हो जाता है – ऐसा सम्यग्दर्शन आराधने योग्य है।

समवशरण के बीच में गणधरों तथा शत इन्द्रों की उपस्थिति में सर्वज्ञ वीतरागी भगवान की दिव्यवाणी खिरती थी और गणधर भगवान उसे झेलते थे। उसे झेलकर गणधरों और तदनुसार कुन्दकुन्दाचार्य आदि वीतरागी सन्तों ने जो समयसारादि परमागम रचे, उनकी ही परम्परा जैनमार्ग में चल रही है और उसके अनुसार ही पण्डित दौलतरामजी ने इस छहढाला की रचना की है। उसमें कहते हैं कि हे जीव ! तेरे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-आनन्द की खान जड़ में नहीं है, राग में नहीं है, विकल्प में नहीं है, तेरे आत्मा का श्रद्धा गुण ही तेरे सम्यग्दर्शन की खान है, तेरा ज्ञान गुण ही तेरे सम्यग्ज्ञान की खान है, तेरा आनन्द गुण ही महा आनन्द की खान है, अनन्त गुण की खान तेरे आत्मा में ही है, ऐसे आत्मा के सन्मुख होने पर आत्मा के श्रद्धा आदि अनंत गुणों का सम्यक् परिणमन हुआ, वही सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि है। जहाँ जिस वस्तु की खान भरी हो, वह वस्तु उसमें से ही निकलेगी, कुएं में पानी हो तो बाहर आवे, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन की खान कहाँ है ? सम्यग्दर्शन की खान आत्मा है, अनन्त गुण की खान आत्मा है। सम्यग्दर्शन आदि की प्राप्ति के लिए अपने आत्मा के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं जाना पड़ता। सम्यग्दर्शन की ध्रुव खान रूप आत्मस्वभाव का स्वीकार करते ही सम्यग्दर्शन होता है, दूसरा कोई उपाय नहीं है। सम्यग्ज्ञान आदि की भी यही रीति है। शुद्धात्मा की सन्मुखता में बीच में अन्य किसी का या रागादि का आलम्बन है ही नहीं, सारा मोक्षमार्ग आत्मा के अवलम्बन से है। **(क्रमशः)**

प्रकाशनार्थ भिजवायें

परमाराध्य भगवान महावीर स्वामी और आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी से सम्बन्धित स्वरचित या अन्य द्वारा रचित कवितायें जिनके पास हों, कृपया प्रकाशनार्थ शीघ्र भिजवाने की कृपा करें। **पता –** डॉ. ममता जैन, 648, विजया बैंक के ऊपर, हिरणमगरी सेक्टर-13, मेन रोड़, उदयपुर (राज.) ई-मेल : **samarpan1008@gmail.com; Phone : 9414103492**

नियमसार प्रवचन –

परिग्रहत्यागव्रत का स्वरूप

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार के शुद्धभावाधिकार की 60वीं गाथा पर हुये आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरस गर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलत: इसप्रकार है –

सव्वेसिं गंथाणं चागो णिरवेक्खभावणापुव्वं।
पंचमवदमिदि भणिदं चारित्तभरं वहंतस्स।।६०।।

(हरिगीत)

निरपेक्ष भावों पूर्वक सब परिग्रहों का त्याग ही।
चारित्रधारी मुनिवरों का पाँचवाँ व्रत कहा है।।६०।।

पर की अपेक्षा से रहित शुद्धनिरपेक्ष भावनापूर्वक सभी प्रकार के परिग्रहों के त्याग सम्बन्धी शुभभाव के साथ भूमिका के योग्य चारित्र का भार वहन करने वाले मुनिवरों को पाँचवाँ परिग्रहत्याग व्रत होता है।

(गतांक से आगे....)

निरपेक्षभावनापूर्वक सर्व परिग्रहों के त्याग रूप, चारित्र का वहन करनेवाले को पाँचवाँ व्रत होता है।

अब पाँचवे अपरिग्रहमहाव्रत का स्वरूप कहते हैं।

देखो! आचार्यभगवान ने स्वयं कहा कि 'णिरवेखभावनापुव्वं' निरपेक्ष भावना सहित यह व्रत होता है। मुनि को मुनित्वोचित निरपेक्ष शुद्धपरिणति के साथ वर्त्तता हुआ (हठरहित) सर्वपरिग्रहत्याग सम्बन्धी शुभोपयोग व्यवहार अपरिग्रहव्रत कहा जाता है। जहाँ शुद्धपरिणति न हो वहाँ शुभोपयोग हठसहित होता है; वह शुभोपयोग तो व्यवहारव्रत भी नहीं कहा जाता। इस पंचमव्रत की तरह अन्य व्रतों को भी समझ लेना।

सम्यग्दर्शन रहित शुभपरिणाम तो व्यवहारव्रत भी नहीं है। निश्चयव्रत प्रकट हुआ हो वहीं व्यवहार होता है। जिसको अभी आत्मा का भान ही नहीं उसको तो श्रावक या मुनिदशा कैसे हो सकती है अर्थात् उसके तो व्रत-तप कुछ भी नहीं होते।

सम्यग्दर्शन के बिना शुभराग करना तो बालव्रत-बालतप है; बालव्रत अर्थात् अज्ञानी का व्रत अर्थात् वास्तविक सच्चाव्रत नहीं। जो शुभराग को धर्म मानता है, उसे निरपेक्ष आत्मा की भावना नहीं होती। जिसको रागरहित शुद्धकारणपरमात्मा का भान होता है, उसे ही निरपेक्ष भावना होती है और उसे ही निश्चयव्यवहारव्रत होता है।

मेरे द्वारा पर का अथवा निमित्त से मेरा कार्य होगा, राग से मुझे लाभ होगा – ऐसी जिसकी मान्यता है, उसको निरपेक्षभाव नहीं होता। निरपेक्षभावना तो ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से ही होती है। ऐसा आश्रय प्रकट होना ही जैनधर्म है। उस आश्रय में कमी रह जाने पर जो शुभ राग शेष रहता है, उसे व्यवहारव्रत है। सम्यग्दर्शन क्या है? इसका भी जीवों को भान नहीं है। अन्तर में ज्ञायकमूर्ति आत्मा के अवलम्बन से ही सम्यग्दर्शन है और उसी के अवलम्बन से धर्म है।

निरपेक्षभावना अर्थात् द्रव्यस्वभाव का आश्रय। चौथे गुणस्थान में द्रव्यदृष्टि होने पर निरपेक्षदृष्टि प्रकट हुई है; परन्तु अभी स्वभाव का विशेष अवलम्बन नहीं है। विशेष अवलम्बन लेने पर मुनिदशा प्रकट होती है। तब निरपेक्षभावनापूर्वक परिग्रहत्याग का शुभराग व्यवहार अपरिग्रहव्रत है।

पाँचवें अपरिग्रहव्रत की बात चल रही है। यह व्रत किसको होता है? जिसको छठे-सातवें गुणस्थान में झूलती मुनिदशा होती है। परमाणु मात्र का भी आत्मा कर्त्ता नहीं, राग की कणिका भी मेरा स्वरूप नहीं – ऐसा जिसको भान है, उसको ही निरपेक्षभावना होती है और वहीं महाव्रत हो सकते हैं। निरपेक्षदृष्टि तो चौथे गुणस्थान में ही सम्यग्दृष्टि को हो जाती है; परन्तु मुनियोग्य शुद्धपरिणति उसके नहीं है। मुनि के तो मुनि योग्य शुद्धपरिणति प्रकट हो गई है; किन्तु छठे गुणस्थान में शुद्धोपयोग नहीं है। त्यागसम्बन्धी अल्प शुभविकल्प वीतराग परिणति है, शुद्धपरिणति है, किन्तु शुद्ध उपयोग नहीं है। शुद्धोपयोग तो निर्विकल्पदशा में सातवें में होगा, छठे में तो शुभराग है।

शुद्धपरिणति तो चौथे गुणस्थान से ही सम्यग्दृष्टि के प्रारंभ हो गई है। अखण्डकारण परमात्मा शुद्धचिदानन्द आत्मा के अवलम्बन द्वारा प्रकट होने वाली श्रद्धा-ज्ञान की निर्मलदशा प्रकटी वह शुद्धपरिणति है और मुनि के तो वह शुद्धपरिणति विशेष बढ़ गई है। चौथे की अपेक्षा पाँचवें, छठे में वीतरागी परिणति बढ़ती जाती है। मुनिराज को तो विशेष निरपेक्षपरिणिति प्रकट हो गई है; वहाँ

सहजपने-हठबिना जो परिग्रहत्याग का शुभ उपयोग है वह व्यवहार से अपरिग्रह है। मिथ्यादृष्टि का शुभभाव तो व्यवहार से भी व्रत नहीं; क्योंकि शुद्धपरिणति के बिना होनेवाला शुभभाव हठवाला है। कारणपरमात्मा का भान करने पर ही कल्याण है, शेष सब कुछ करना तो इकाईरहित शून्य के समान ही है। जिसे कारणपरमात्मा का भान है और उसमें लीनता से विशेष निरपेक्षता प्रकटी है, उसे आत्मा के अवलम्बन से जितनी वीतरागता है उतना निश्चयचारित्र है और जितना शुभराग है वह व्यवहारचारित्र है।

शुद्धपरिणति और शुद्धोपयोग भिन्न-भिन्न दशायें हैं। शुद्धपरिणति तो चौथे गुणस्थान से प्रारंभ हो जाती है और शुद्धोपयोग मुख्यपने मुनिदशा में सातवें गुणस्थान से होता है, इसलिए शुद्धोपयोग को सातवें से गिना है। चौथे-पाँचवें में भी जब ज्ञानी आत्मा के अनुभव में एकाग्र होता है तब उसको भी शुद्धोपयोग होता है, किन्तु बहुत अल्प होता है। चौथे गुणस्थान से शुद्धपरिणति का प्रारंभ हो जाता है। श्रावक के पाँचवें गुणस्थान से स्वभाव का आश्रय लेने पर जितनी वीतरागी परिणति हुई है, उतना निश्चयव्रत है और त्याग आदि का शुभभाव व्यवहारव्रत है; इसीप्रकार मुनि के महाव्रत में भी समझना।

सकल परिग्रह के परित्यागस्वरूप निजकारणपरमात्मा के स्वरूप में अवस्थित (स्थिर हुए) परमसंयमियों को – परमजिनसंयोगीश्वरों को – सदैव निश्चय-व्यवहारात्मक सुन्दर चारित्र का भार वहन करनेवालों को, बाह्य-अभ्यंतर चौबीस प्रकार के परिग्रह का परित्याग ही परम्परा से पंचमगति के हेतुभूत पंचमव्रत हैं।

निजकारणपरमात्मा तो त्रिकाल परिग्रह के त्यागस्वरूप ही है। त्रिकाल कारणशुद्धजीव ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का कारण है। कारणशुद्धजीव-निज कारणपरमात्मा-सामान्य-शक्तिरूपस्वभाव – तो त्रिकाल समस्त परिग्रह के त्यागस्वरूप ही है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान करके उसमें स्थिर हुए परमसंयमी मुनि को ही यह महाव्रत होता है।

आत्मस्वभाव के अवलम्बन से प्रकट होने वाली रागरहित परिणति निश्चयव्रत और महाव्रत का शुभविकल्प व्यवहार से व्रत है। मुनि के शरीर की दशा-सहज नग्न हो जाती है, शरीर की दशा का कर्त्ता आत्मा नहीं है। आत्मा परवस्तु के परिग्रह को छोड़ें या ग्रहण करें – ऐसा माने वह तो मिथ्यादृष्टि है, उसको व्रत नहीं होते। आत्मा तो त्रिकाल परवस्तु के परिग्रह से रहित ही है। ऐसे आत्मा की दृष्टि

और एकाग्रतापूर्वक ही निश्चयव्यवहारव्रत होते हैं।

त्रिकालीकारणपरमात्मा तो सदा परिग्रहरहित ही है, अर्थात् 'परिग्रह छोड़ूँ' यह बात भी उसमें नहीं है। तीनकाल में पुण्य-पाप या शरीरादि का परिग्रह भगवान आत्मा में नहीं है, वह तो त्रिकाल उनके त्यागस्वरूप ही है। ऐसा आत्मा ही कारणपरमात्मा है। चारित्र का कारण कौन ? त्रिकाल परिग्रह के त्यागस्वरूप यह कारणपरमात्मा ही दर्शन-ज्ञान-चारित्र का कारण है, उसी के आश्रय से रत्नत्रय प्रकट होता है।

कारणशुद्धपरमात्मा तो त्रिकाल है और उसमें अवस्थित होनेवाली दशा नई प्रकट होती है। जिसको ऐसे कारणपरमात्मा में स्थिरता प्रकट हुई है, वह परमसंयमी मुनि है; उसी परमजिनयोगीश्वर को निश्चय-व्यवहारचारित्र होता है। स्वभाव के अवलम्बन से जितनी वीतरागता हुई; उतना निश्चयचारित्र है, उसके साथ अट्ठाईस मूलगुण आदि का विकल्प व्यवहारचारित्र है। जिसके बाह्य-अभ्यन्तर समस्त परिग्रह का त्याग होता है, उसी का नाम अपरिग्रहव्रतधारी है।

मुनि के शरीर की नग्नदशा सहज होती है; परन्तु अन्तर में स्वभाव के अवलम्बन से निश्चयचारित्र प्रकट हुआ हो तो नग्नशरीर को चारित्र का निमित्त कहा जाता है। अन्दर शुद्धचारित्र प्रकट हुए बिना नग्नशरीर हो तो वह तो चारित्र का निमित्त भी नहीं है। बाह्य में वस्त्र, पैसा, पात्रादि परिग्रह का त्याग हो, ऐसे मुनि को ही पाँचवाँ अपरिग्रहव्रत होता है, वह पंचमगति का कारण है। चौबीस प्रकार के परिग्रहत्याग का शुभविकल्प तो व्यवहारव्रत है; चूँकि उसके साथ शुद्धपरिणति है, इसलिए उस व्यवहारव्रत को उपचार से मोक्ष का परम्पराकारण कहा है।

शुभोपयोगरूप व्यवहारव्रत शुद्धोपयोग का हेतु है और शुद्धोपयोग मोक्ष का हेतु है – ऐसा मानकर यहाँ उपचार से व्यवहारव्रत को मोक्ष का परम्पराहेतु कहा है। वास्तव में तो शुभोपयोगी मुनि के मुनियोग्य शुद्धपरिणति ही शुद्धात्मद्रव्य का अवलम्बन लेती हुई होने से विशेष शुद्धिरूप शुद्धोपयोग का हेतु होती है और वह शुद्धोपयोग मोक्ष का हेतु होता है। इस तरह शुद्धपरिणति में अवस्थित मोक्ष के परम्परा हेतुपने का आरोप उसके साथ रहनेवाले शुभोपयोग में करके व्यवहारव्रत को मोक्ष का परम्पराहेतु कहा गया है। जहाँ शुद्धपरिणति ही न हो वहाँ मात्र शुभोपयोग में मोक्ष के परम्पराहेतुत्व का आरोप भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि जहाँ मोक्ष का यथार्थ परम्पराहेतु प्रकट ही नहीं हुआ, विद्यमान ही नहीं; वहाँ शुभोपयोग में आरोप किसका करें ?

(क्रमशः)

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : शास्त्र में पर्याय को अभूतार्थ क्यों कहा है, क्या उसकी सत्ता नहीं है?

उत्तर : त्रिकाली स्वभाव को मुख्य करके भूतार्थ कहा और पर्याय को अभूतार्थ कहा अर्थात् पर्याय है नहीं - ऐसा कहा। वहाँ पर्याय को गौण करके ही 'नहीं है' ऐसा कहा; परन्तु इससे ऐसा नहीं समझना कि पर्याय सर्वथा है ही नहीं। इसी भाँति सम्यग्दृष्टि को राग नहीं, दु:ख नहीं - ऐसा कहा; परन्तु इससे ऐसा मत समझना कि वर्तमान पर्याय में राग, दु:ख सर्वथा है ही नहीं। पर्याय में जितना राग है, उतना दु:ख भी अवश्य है जहाँ शास्त्र में ऐसा कहा है कि सम्यग्दृष्टि की राग या दु:ख नहीं है सो वह तो दृष्टि की प्रधानता से कहा है; किन्तु पर्याय में जितना आनंद है, उतना भी ज्ञान जानता है और जितना राग है, उतना दु:ख भी साधक को है; ऐसा ज्ञान जानता है। यदि वर्तमान पर्याय में होनेवाले राग व दु:ख को ज्ञान न जाने तब तो धारणा ज्ञान में भी भूल है। सम्यग्दृष्टि के दृष्टि का जोर बताने के लिये ऐसा भी कहा है कि वह निरास्रव है, किन्तु यदि आस्रव सर्वथा न हो तो मुक्ति हो जाना चाहिये।

कर्त्ता-कर्म अधिकार में ऐसा कहा है कि सम्यग्दृष्टि के जो राग होता है, उसका कर्त्ता पुद्गल कर्म है, आत्मा उसका कर्त्ता नहीं है; तथा प्रवचनसार में ऐसा कहा है कि ज्ञानी के जो राग होता है, उसका कर्त्ता आत्मा है; राग का अधिष्ठाता आत्मा है। फिर भी एकान्त मानें कि ज्ञानी राग का, दु:ख का कर्त्ता भोक्ता नहीं है तो वह जीव नय विवक्षा को नहीं समझने के कारण मिथ्यादृष्टि है।

एक पर्याय जितना अपने को मानना भी मिथ्यात्व है। तो फिर राग को अपना मानना, शरीर को अपना मानना, माता-पिता धनादि को अपना मानना तो महान मिथ्यात्व है। अहाहा ! अपने को बहुत बदलना पड़ेगा। अनेक प्रकार की मिथ्यामान्यताओं को छोड़कर ही आत्मसन्मुख हो सकोगे।

प्रश्न : शुद्ध-अशुद्ध पर्यायों के पिण्ड को द्रव्य कहा है न ?

उत्तर : वह तो निश्चयाभासी जीव पर्याय को सर्वथा मानता ही नहीं है, उस

अपेक्षा से उसे समझाने के लिये शुद्ध-अशुद्ध पर्यायों का पिण्ड सो द्रव्य है - ऐसा कहा है; परन्तु उससे द्रव्य में शुद्ध-अशुद्ध पर्यायें वर्तमानरूप से विद्यमान हैं - ऐसा कहने का तात्पर्य नहीं है। द्रव्य तो शक्तिरूप से अकेला पारिणामिकभावरूप ही है; जो पर्याय को सर्वथा नहीं मानता, उससे कहते हैं कि भविष्य की पर्याय द्रव्य में शक्तिरूप है और भूत की पर्याय योग्यतारूप है। पर्यायें सर्वथा है ही नहीं - ऐसा नहीं है; इतना जानने के लिये कहा है।

प्रश्न : दो नयों को जानना कहा है न ?

उत्तर : जानना तो ज्ञान का स्वभाव है, जानने के लिये तो सभी नय कहे हैं; परन्तु धर्मरूप प्रयोजन की सिद्धि के लिये तो एकरूप त्रिकालीध्रुव शुद्धचैतन्य सामान्य द्रव्य ही आश्रय करने योग्य है। जानने के विषय में आदरणीयपना मान लेने से दृष्टि की विपरीतता होती है।

प्रश्न : पर्याय को नहीं मानने से तो एकान्त हो जाता है न ?

उत्तर : 'पर्याय है ही नहीं' - ऐसा नहीं है। जो श्रद्धा करती है, जानती है, स्थिरता करती है; वह पर्याय ही है; परन्तु पर्याय का आश्रय करना विपरीतता है। चैतन्य सामान्य का आश्रय करने के लिये पर्याय को गौण करके निषेध किया जाता है; परन्तु उससे पर्याय पर्यायरूप में सर्वथा है ही नहीं - ऐसा नहीं है।

एकरूप ध्रुव सामान्य द्रव्य परमशुद्धनिश्चयनय का विषय है, उसमें निर्मल पर्याय को मिलाकर देखना मेचकपना होने से अशुद्धनय का विषय है, मलिनता है, सोपाधिक है, वह सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है।

एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठोर।
समल-विमल न विचारिये, यहै सिद्धि नहीं और ।।

एकरूप ध्रुव चैतन्य ही सम्यग्दर्शन का विषय है। शरीरादि नोकर्म को तथा द्रव्यकर्म को बाह्यतत्त्व कहना हो, तब राग को स्वतत्त्व कहा जाता है; जब राग को बाह्यतत्त्व कहना हो, तब निर्मलपर्याय को स्वतत्त्व कहा जाता है; जब निर्मलपर्याय को बाह्यतत्त्व कहना हो तब त्रिकालीद्रव्य को स्वतत्त्व कहा जाता है; राग या निर्मल पर्याय की अपेक्षा से बाह्य तत्त्व या स्वतत्त्व दोनों कहे जाते हैं, परन्तु त्रिकाली ध्रुव द्रव्य को तो सर्वथा प्रकार से स्वतत्त्व ही कहा जाता है और वह एक ही दृष्टि का विषय होने से उपादेय है।

समाचार दर्शन -

जनप्रतिनिधियों (राजनेताओं) का अभिनंदन समारोह संपन्न

जयपुर (राज.) : यहाँ टोडरमल स्मारक भवन में दिनांक 8 दिसम्बर को रात्रि में राजस्थान सरकार के विशिष्ट जनप्रतिनिधियों का अभिनन्दन समारोह सानन्द संपन्न हुआ।

इस अवसर पर समारोह के मुख्य अतिथि श्री कालीचरणजी सर्राफ (उच्च शिक्षामंत्री-राजस्थान सरकार) थे। विशिष्ट अतिथिगण के रूप में तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के अतिरिक्त श्री अशोकजी परनामी (प्रदेश अध्यक्ष-भाजपा, राजस्थान), श्री निर्मलजी नाहटा (महापौर-जयपुर), श्री बनवारीलालजी सिंघल (विधायक-अलवर), श्री मनोजजी भारद्वाज (उपमहापौर-जयपुर), श्री संजयजी जैन (जयपुर शहर अध्यक्ष-भाजपा), श्री अशोकजी गर्ग (पार्षद), श्री महेन्द्रजी अजमेरा (पार्षद), श्रीमती जया जैन (पार्षद), श्रीमती श्वेता शर्मा (पार्षद), पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल, ब्र.यशपालजी जैन, पण्डित परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल आदि विद्वत्गण तथा जस्टिस नरेन्द्रमोहनजी कासलीवाल (अध्यक्ष-महावीरजी), श्री महेन्द्रकुमारजी पाटनी (राष्ट्रीय कार्याध्यक्ष-महासमिति), श्री सुभाषजी जैन (अध्यक्ष-राजस्थान जैनसभा), श्री नरेशकुमारजी सेठी (अध्यक्ष-महावीर शिक्षा समिति), श्री ज्ञानचंदजी झांझरी (मंत्री-पदमपुरा), श्री बलभद्रजी जैन (अध्यक्ष-चूलगिरि), श्री ताराचंदजी पाटनी (अध्यक्ष-पार्श्वनाथ चैत्यालय), श्री सुरेन्द्रकुमारजी पाण्ड्या, श्री सुरेन्द्रकुमारजी पाटनी, श्री जितेन्द्रजी जैन आदि महानुभाव मंचासीन थे। कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री सुशीलकुमारजी गोदिका जयपुर ने की।

कार्यक्रम का शुभारंभ गायक श्री गौरव सौगानी के मंगलाचरण से हुआ। तत्पश्चात् तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल ने अपने उद्बोधन में जैनधर्म दर्शन की सुरक्षा के लिए बालकों के मन-मस्तिष्क में जिनवाणी अर्थात् जैनधर्म के सिद्धांतों को उतारने की बात कही। उन्होंने कहा कि संस्कृत व प्राकृत हमारी प्राचीन भाषाएँ हैं, जिनमें मूल ग्रंथों की रचनाएँ हुई है। जिनवाणी को माँ भी कहते हैं। अत: हमें अपनी माँ से सीधे बात करने के लिए दुभाषिये की जरूरत न पड़े इसके लिए संस्कृत एवं प्राकृत जैसी मूल भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन पर बल देना चाहिए, तभी हम प्राचीन संस्कृति को सुरक्षित रख पायेंगे। हमारी संस्था इसी कार्य में पिछले 45 वर्षों से संलग्न है।

डॉ. भारिल्ल के उद्बोधन के उपरान्त मंचासीन सभी अतिथियों का परिचय श्री सुरेन्द्रकुमारजी बज ने दिया। श्री महेन्द्रकुमारजी पाटनी ने अतिथियों का स्वागत किया तथा टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की गतिविधियों का परिचय ट्रस्ट के कार्यकारी महामंत्री श्री परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल ने दिया।

इस अवसर पर पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के पदाधिकारियों एवं जयपुर जैन समाज की

विभिन्न संस्थाओं से पधारे विशिष्ट पदाधिकारियों द्वारा मंचासीन सभी राजनेताओं का तिलक लगाकर, शॉल, माल्यार्पण, श्रीफल, अंगवस्त्र एवं प्रशस्ति-पत्र भेंटकर सम्मान किया गया।

कार्यक्रम का संचालन श्री शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल ने किया एवं आभार प्रदर्शन पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील ने किया। कार्यक्रम में जयपुर जैन समाज के शताधिक गणमान्य महानुभाव उपस्थित थे।

वेदी प्रतिष्ठा सानन्द संपन्न

उदयपुर (राज.) : यहाँ हिरणमगरी सेक्टर 3 नेमिनाथ जैन कॉलोनी में श्री शांतिनाथ दिगम्बर जिन चैत्यालय में श्री शांतिनाथ दिगम्बर जैन मुमुक्षु ट्रस्ट के तत्त्वावधान में दिनांक 1 से 3 दिसम्बर तक वेदी प्रतिष्ठा का कार्यक्रम संपन्न हुआ।

इस अवसर पर प्रतिदिन गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के सी.डी. प्रवचनों के अतिरिक्त तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल एवं पण्डित देवेन्द्रकुमारजी मंगलायतन के प्रवचनों का लाभ मिला।

कार्यक्रम में श्री शांतिनाथ भगवान, श्री आदिनाथ भगवान, श्री महावीर भगवान एवं श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमाएं विराजमान की गईं। साथ ही इन्द्रसभा, श्राविका सभा, अष्ट देवियों की नृत्य प्रस्तुति, प्रतिदिन शोभायात्रा आदि कार्यक्रमों का भी आयोजन किया गया। अन्तिम दिन सभी विद्वानों का सम्मान भी किया गया।

विधि-विधान के समस्त कार्य ब्र. अभिनन्दनजी शास्त्री खनियांधाना के निर्देशन में पण्डित राजकुमारजी शास्त्री बांसवाड़ा, पण्डित अश्विनजी नानावटी नौगामा, पण्डित सचिनजी शास्त्री चैतन्यधाम, पण्डित अंकितजी शास्त्री लूणदा एवं पण्डित संदीपजी शास्त्री लूणदा के सहयोग से संपन्न हुये। कार्यक्रम में साथ ही स्थानीय विद्वानों का भी सहयोग रहा।

संपूर्ण कार्यक्रम का निर्देशन व संयोजन डॉ. महावीर प्रसादजी शास्त्री द्वारा हुआ।

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

1 से 7 जनवरी 2015	नागपुर (महा.)	पंचकल्याणक
20 से 22 जनवरी	हेरले-कोल्हापुर	वेदी शिलान्यास
23 से 25 जनवरी	दीवानगंज,भोपाल	वेदी शिलान्यास
15 फरवरी	हस्तिनापुर	शिलान्यास
20 से 22 फरवरी	जयपुर (राज.)	वार्षिकोत्सव
1 से 6 अप्रैल	विदिशा (म.प्र.)	पंचकल्याणक
17 से 23 मई	पारले (मुम्बई)	पंचकल्याणक
24 मई से 10 जून	मेरठ	प्रशिक्षण-शिविर

निबंध भेजें

ब्र. रवीन्द्रजी 'आत्मन्' की प्रेरणा से युवाओं को धर्म से जोड़ने के उद्देश्य से राष्ट्रीय निबंध प्रतियोगिता में देशभर से निबंध आमंत्रित हैं - **विषय -** युवा धर्म से विमुख : कारण और निवारण; **पुरस्कार -** प्रथम (11000/-), द्वितीय (7100/-), तृतीय (5100/-), 11 सांत्वना (1100/-)। **निबंध भेजने का पता-** जीवन शिल्प इंटर कॉलेज बानपुर, जिला-ललितपुर - 284402 (उ.प्र.); **संपर्क सूत्र-** विकास जैन (09453661666), संजय सिद्धार्थी (07509824330) **नोट :-** (1) निबंध शब्द सीमा 2000 शब्द। (2) भाषा शुद्ध, स्पष्ट, मौलिक। (3) निबंध 15 मार्च 2015 तक उक्त पते पर अवश्य भेजें। (4) निबंध में कांट-छांट व एक दूसरे से कॉपी मिलती न हो। (5) निर्णायक मंडल का निर्णय सर्वमान्य होगा। (6) निबंध के साथ अपना पता, मोबा.नं. एवं पासपोर्ट साईज फोटो अवश्य भेजें।

आगामी कार्यक्रम ...

ज्ञानमार्गणा-लेश्यामार्गणा शिविर

देवलाली-नासिक (महा.) में दिनांक 6 से 10 फरवरी 2015 तक करणानुयोग शिविर आयोजित किया जा रहा है। इस अवसर पर डॉ. उज्ज्वला शहा द्वारा प्रतिदिन 6-6 घंटे कक्षाओं का लाभ मिलेगा। आपके आने की पूर्व सूचना देवलाली/मुम्बई ऑफिस में अवश्य दें, ताकि आपकी समुचित व्यवस्था की जा सके। आवास व भोजन की व्यवस्था नि:शुल्क रहेगी। सभी साधर्मीजन 'सम्यग्ज्ञानचंद्रिका जीवकाण्ड भाग 1 व 2' ग्रंथ अपने साथ लावें। ये शास्त्र देवलाली में सशुल्क उपलब्ध होंगे।

संपर्क सूत्र - वीतराग वाणी प्रकाशक, 157/9, निर्मला निवास, सायन (पूर्व), मुम्बई-400022, फोन - 022-24073581; पूज्य कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, कहान नगर, लाम रोड, देवलाली, जिला-नासिक, 422401 (महा.), फोन - 0253-2491044

शोक समाचार

(1) मुजफ्फरनगर (उ.प्र.) निवासी श्री महेन्द्रकुमारजी जैन शीरेवालों का स्वर्गवास दिनांक 18 अक्टूबर को शांतपरिणामोंपूर्वक हो गया। आपकी स्मृति में जैनपथप्रदर्शक एवं वीतराग-विज्ञान हेतु 2100/- रुपये प्राप्त हुये।

(2) अकलूज (महा.) निवासी स्व.श्री शांतिनाथजी सोनाज के ज्येष्ठ पुत्र **श्री उदयकुमारजी सोनाज भिगवण** का दिनांक 24 नवम्बर को शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। स्मारक ट्रस्ट को आपका सदैव सहयोग मिलता रहता था। भिगवण में पाठशाला एवं स्वाध्याय के संचालन में आपकी सक्रिय भूमिका रहती थी।

दिवंगत आत्मायें चतुर्गति के दु:खों से छूटकर शीघ्र ही अनंत अतीन्द्रिय आनन्द को प्राप्त हों - यही मंगल भावना है।

सिद्धचक्र विधान सानन्द संपन्न

गजपंथ-नासिक (महा.) : यहाँ अष्टाह्निका महापर्व के अवसर पर दिनांक 30 अक्टूबर से 6 नवम्बर तक श्री सिद्धचक्र महामण्डल विधान का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के सी.डी. प्रवचनों के अतिरिक्त ब्र. सुनीलजी शिवपुरी द्वारा समयसार एवं नियमसार पर प्रवचनों का लाभ मिला। दोपहर में ब्र. धन्यकुमारजी द्वारा प्रौढकक्षा का लाभ मिला। सायंकाल पण्डित अंकितजी शास्त्री खड़ैरी व पण्डित विपिनजी शास्त्री बांसवाड़ा द्वारा बाल कक्षा ली गई।

कार्यक्रम में मुम्बई, पूना, सोलापुर, पँढरपुर, डसाला, चिकली, मलकापुर, हिंगोली, औरंगाबाद आदि स्थानों से 150 साधर्मियों ने पधारकर तत्त्वज्ञान का लाभ लिया।

विधि-विधान के समस्त कार्य पण्डित अशोकजी उज्जैन एवं पण्डित रमेशजी इन्दौर द्वारा संपन्न हुये। संपूर्ण कार्यक्रम का निर्देशन एवं विधान के अष्टक व जयमालाओं का अर्थ ब्र. जतीशचंदजी शास्त्री दिल्ली ने स्पष्ट किया।

टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के स्नातक -

डॉ. ऋषभ शास्त्री पुरस्कृत

रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर (म.प्र.) के तत्त्वावधान में आयोजित अखिल भारतीय दर्शन परिषद् के 59वें अधिवेशन में टोडरमल महाविद्यालय के स्नातक डॉ. ऋषभजी शास्त्री ललितपुर द्वारा **'विश्वतत्त्व प्रकाश के आलोक में चार्वाक सम्मत जीव विचार की समीक्षा'** शीर्षक से प्रस्तुत आलेख को तत्त्वमीमांसा विभाग में युवा वर्ग द्वारा प्रस्तुत सर्वश्रेष्ठ आलेख घोषित कर उन्हें 'डॉ. विजयश्री स्मृति युवा पुरस्कार' से पुरस्कृत किया गया।

शिक्षण-शिविर संपन्न

दिल्ली : यहाँ पार्श्वविहार स्थित श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर में अखिल भारतीय जैन विद्वत्परिषद् के तत्त्वावधान में दिनांक 12 से 14 दिसम्बर तक शिक्षण शिविर संपन्न हुआ।

निश्चय-व्यवहार नय पर आयोजित इस शिविर में पण्डित अशोकजी गोयल शास्त्री एवं पण्डित ऋषभकुमारजी शास्त्री दिल्ली के व्याख्यानों का लाभ मिला। शिविर के संयोजक श्री अनिलजी जैन दिल्ली थे। **- अखिल बंसल**

तत्त्वार्थसूत्र पर प्रवचन

दिल्ली : अखिल भारतीय जैन विद्वत्परिषद् के मंत्री पण्डित अशोकजी गोयल शास्त्री द्वारा तत्त्वार्थसूत्र पर प्रवचन मंगल कलश चैनल पर प्रात: 7.40 से 8.00, दोपहर में 2.20 से 2.40 एवं रात्रि में 8.40 से 9.00 बजे तक अगस्त 2014 से नियमित रूप से दिखाए जा रहे हैं। अवश्य लाभ लें। **- अखिल बंसल, महामंत्री**

(आगामी कार्यक्रम...)

महामस्तकाभिषेक एवं तृतीय वार्षिक महोत्सव

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा फरवरी 2012 में ऐतिहासिक एवं भव्य पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन किया गया था; उस महामहोत्सव की यादें सभी को पुन: ताजा हो जावें, इस हेतु पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का **तृतीय वार्षिक महोत्सव दिनांक 20 से 22 फरवरी 2015 तक श्री टोडरमल स्मारक भवन जयपुर में अनेक मांगलिक कार्यक्रमों सहित आयोजित होने जा रहा है।**

इस त्रिदिवसीय महोत्सव में डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल, ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना आदि अनेक विद्वानों का प्रवचन, प्रौढ कक्षा व गोष्ठियों के माध्यम से अपूर्व लाभ प्राप्त होगा।

इसके अतिरिक्त नित्य-नियम पूजन, जिनेन्द्र भक्ति, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि का भी आयोजन किया जायेगा।

इस मंगल महोत्सव में पधारने हेतु आप सभी को

हार्दिक आमंत्रण है।

छहढाला प्रवचन शिविर संपन्न

(1) सागर (म.प्र.) : यहाँ श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल ट्रस्ट के तत्त्वावधान में दिनांक 13 से 18 नवम्बर तक छहढाला प्रवचन शिविर संपन्न हुआ।

इस अवसर पर गुरुदेवश्री के छहढाला विषय पर सी.डी. प्रवचनों के अतिरिक्त पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली द्वारा दोनों समय प्रवचनों का लाभ मिला।

(2) शिवपुरी (म.प्र.) : यहाँ दिनांक 19 से 23 नवम्बर तक छहढाला प्रवचन शिविर संपन्न हुआ। इस अवसर पर गुरुदेवश्री के छहढाला विषय पर सी.डी. प्रवचनों के अतिरिक्त पण्डित रजनीभाई दोशी हिम्मतनगर के प्रवचनों का लाभ मिला।

(3) आरोन (म.प्र.) : यहाँ दिनांक 26 से 30 नवम्बर तक छहढाला प्रवचन शिविर संपन्न हुआ। इस अवसर पर गुरुदेवश्री के छहढाला विषय पर सी.डी. प्रवचनों के अतिरिक्त ब्र. नन्हेभैया सागर के प्रवचनों का लाभ मिला।

(4) बेगमगंज (म.प्र.) : यहाँ दिनांक 11 से 15 दिसम्बर छहढाला प्रवचन शिविर संपन्न हुआ। इस अवसर पर गुरुदेवश्री के छहढाला विषय पर सी.डी. प्रवचनों के अतिरिक्त ब्र. नन्हेभैया सागर द्वारा तीनों समय प्रवचनों का लाभ मिला।

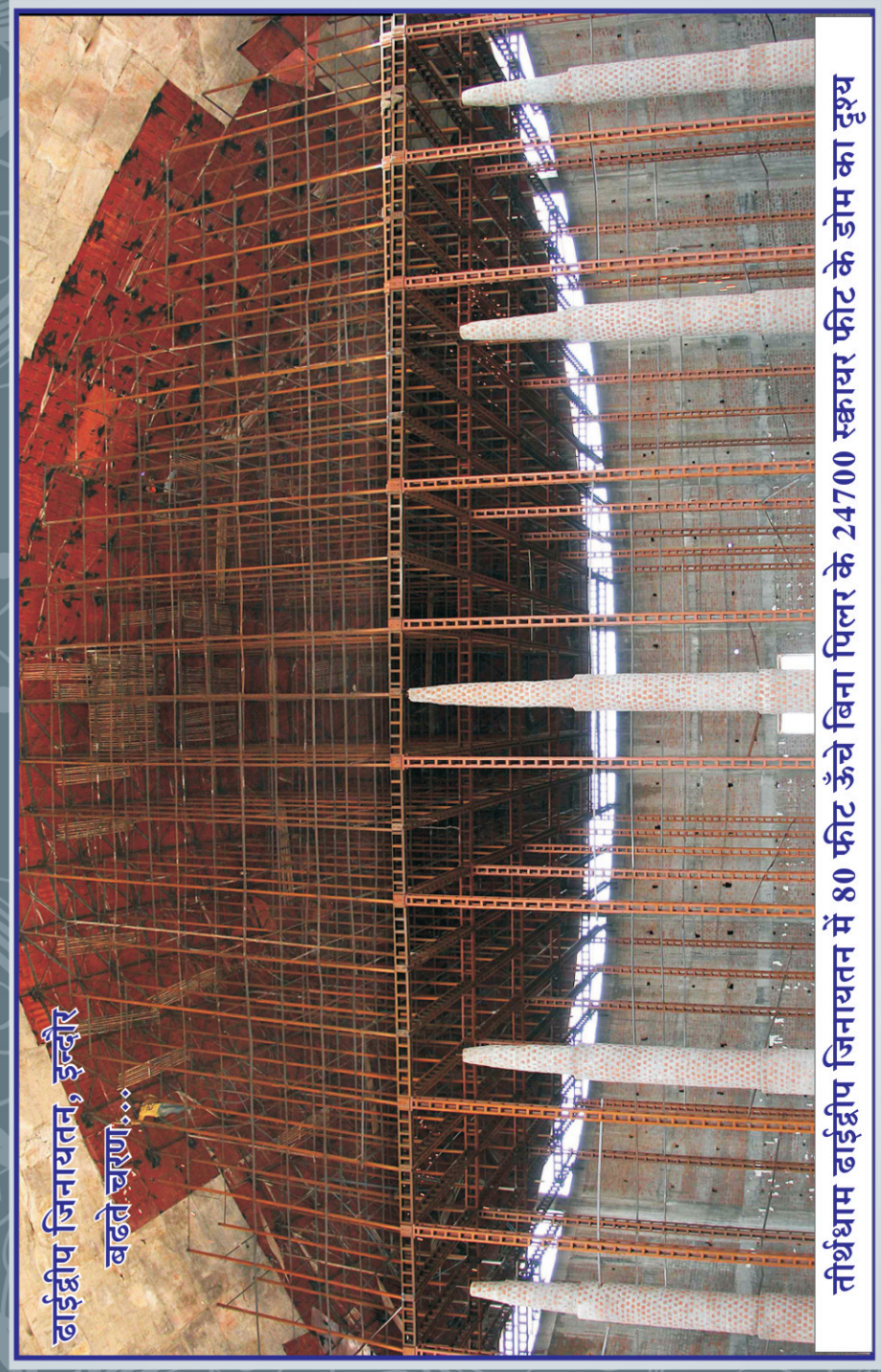

तीर्थधाम ढाईद्वीप जिनायतन में 80 फीट ऊँचे बिना पिलर के 24700 स्क्वायर फीट के डोम का दृश्य

ढाईद्वीप जिनायतन, इन्दौर बढते चरण...

R.N.I. No. 38278/83 Postal Regd. No. RJ/JPC/M-32/2012-14

ढाईद्वीप जिनायतन, इन्दौर
बढ़ते चरण...

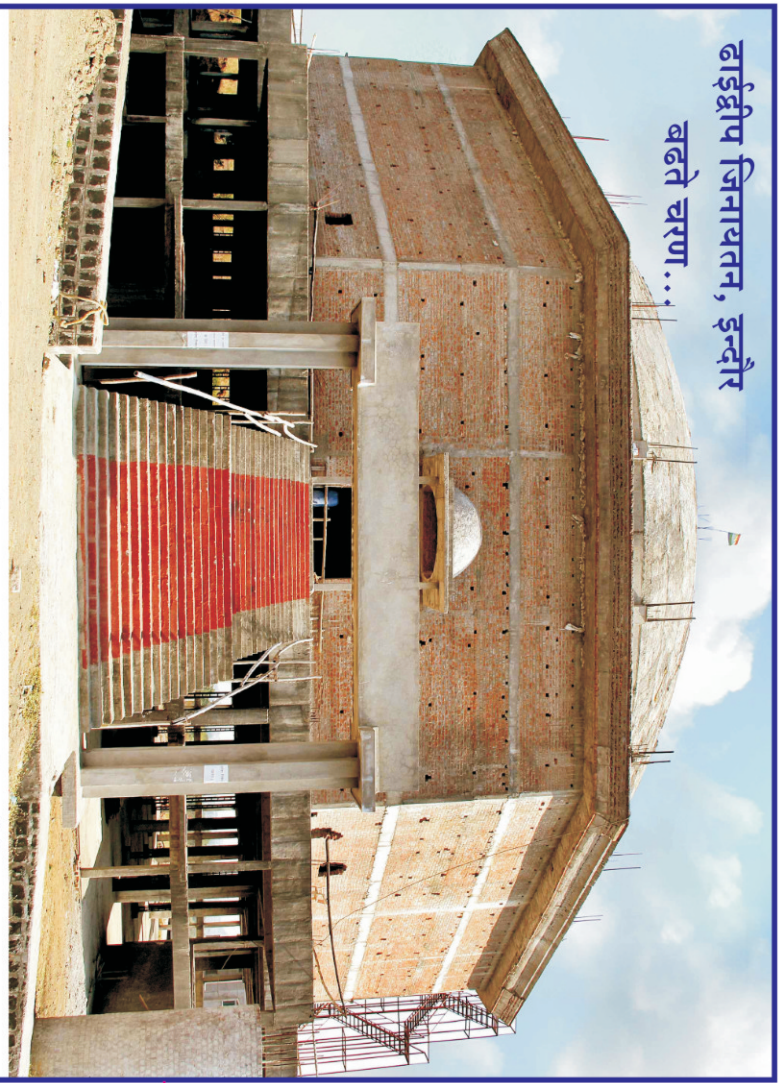

तीर्थधाम ढाईद्वीप जिनायतन के 108 फीट ऊँचे
24000 स्क्वायर फीट के दो मंजिला मन्दिर का बाहरी दृश्य

सम्पादक :
डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच. डी.
सह-सम्पादक :
डॉ. संजीवकुमार गोधा
एम.ए.द्वय , नेट, एम. फिल (जैनदर्शन), पीएच.डी.
प्रकाशक एवं मुद्रक :
ब्र. यशपाल जैन, एम. ए.
द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये
रेनबो ऑफसेट प्रिंटर्स, बाईस गोदाम, जयपुर से
मुद्रित एवं प्रकाशित।

If undelivered please return to -- **Pandit Todarmal Smarak Trust , A-4, Bapu Nagar, Jaipur - 302015**